महावीर का अनुपम उपहार : अपरिग्रह

- नीरज जैन

भगवान महावीर के द्वारा बताये धर्म को यदि एक शब्द में कहना हो तो वह शब्द होगा 'अहिंसा'और उस धर्म तक पहुंचने के उपाय यदि गिनाना चाहें तो पहला उपाय होगा 'अपरिग्रह' ।

पाप तो पाँच हैं- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह । परन्तु आज मनुष्य के जीवन में परिग्रह ही शेष चारों पापों का मूल बन रहा है । शायद यही कारण रहा होगा कि भगवान महावीर ने अपरिग्रह को अपने उपदेश में प्रमुखता से बार-बार दोहराया । महावीर की वाणी को व्याख्यापित करने वाले संतों ने तो स्पष्ट ही परिग्रह-लिप्सा को शेष चार पापों का जनक बताया है । समणसुत्तं में एक गाथा आती है-

संग णिमित्तं मारइ, भणई अलीकं, करेज्ज चोरिक्कं,
सेवइ मेहुण-मिच्छं, अपरिमाणो कुणदि पावं ।

मनुष्य परिग्रह के लिये ही हिंसा करता है । संग्रह के निमित्त ही झूठ बोलता है और उसी अभिप्राय से चोरी के कार्य करता है । कुशील भी मनुष्य के जीवन में परिग्रह की लिप्सा के माध्यम से ही आता है । केवल शारीरिक दुराचार ही कुशील नहीं है । भाई-भाई के बीच सम्पत्ति को लेकर उपजा विवाद, माता-पिता का अपनी संतानों के बीच का तनाव या विवाद और पति-पत्नी के बीच की दूरियाँ, जहाँ परस्पर का शील-सौजन्य खण्डित हो जाता है, मर्यादायें टूट जाती हैं, वहाँ सबसे पहले शील ही तो टूटता है । भगवान महावीर की देशना में परिग्रह-लिप्सा को सबसे बड़ा पाप कहा गया है । पाँचों पाप परिग्रह की परिभाषा में आ जाते हैं क्योंकि उनकी जड़ परिग्रह ही है । इसीलिये लोभ को 'पाप का बाप' कहा गया है । उसी के माध्यम से शेष चार पाप हमारे जीवन में प्रवेश पा रहे हैं । लिप्सा ही वह छिद्र है जिसमें होकर हमारे व्यक्तित्व के प्रासाद में पाप की धारा का रिसाव हो रहा है ।

परिग्रह के भेद अनेक हो सकते हैं और उसके अभिप्राय भी शुभ और अशुभ आदि कई प्रकार के हो कहे जासकते हैं, परन्तु एक क्षण के लिये भी यह भुलाया नहीं जाना चाहिये कि परिग्रह अपने आपमें पाँचवाँ पाप है । महावीर ने आरम्भ-परिग्रह के सभी कार्यों को 'सावद्य' यानी पाप रूप बताते हुये, श्रावक धर्म या 'सागार धर्म' को अपने जीवन निर्वाह के लिये सीमित परिग्रह की स्वीकृति देकर संतोष को व्रत कहकर धारण करने की समझाइस दी है । दिगम्बर मुद्रा धारण करके मुनियों और आर्यिकाओं के लिये उन्होंने नौ कोटि से, यानी कृत-कारित-अनुमोदना, मन-वचन-काय और समरम्भ-समारम्भ-आरम्भ, सभी प्रकार से आरम्भ-परिग्रह के त्याग को अनिवार्य और सबसे प्रमुख उपाय बताया है ।

परिग्रह-पूजा ही महावीर के संघ-भेद का कारण बनी

महावीर स्वामी ने यह सुनिश्चित उपदेश दिया कि आत्म-साधना की यात्रा पूर्णत: अपरिग्रही होकर ही की जा सकती है । किसी भी हेतु के लिये परिग्रह की आशा, अभ्यर्थना या अभिप्राय, साधु परमेष्ठी को उस गरिमामय पूज्य पद से उतार कर लोक में हँसी का पात्र, और

परलोक में दुर्गति का पात्र बना देगा। किन्तु काल की विषम-बयार ने महावीर की इस ज्योति-शिखा को अधिक समय तक अकम्प नहीं रहने दिया। वीर निर्वाण के पांच सौ साल ही बीते थे कि 'साधना के मार्ग में परिग्रह की भूमिका' को लेकर मत-भिन्नता प्रारम्भ हो गई थी, फिर अगले सौ साल के भीतर महावीर के अनुयायी संतों में 'पंथ-भेद' हो गया। आज महावीर के अनुयायियों में दिगम्बर-श्वेताम्बर नाम से जो दो धारायें प्रवर्तमान हैं, उनकी पृथकता का मूल कारण अन्य कोई सिद्धान्त-भेद नहीं, मात्र परिग्रह संबंधी अवधारणाओं की भिन्नता ही थी।

पंथ-भेद के इतिहास में हम पाते हैं कि पंथ भेद के समय हिंसा-झूठ-चोरी और कुशील को पाप मानने में सभी सम्प्रदाय सहमत थे, इस मान्यता में कसी को कोई एतराज नहीं था। उन चार पापों के बारे में सभी साधक एक मत थे, परन्तु एक विशेष वर्ग उनके बीच ऐसा बन गया जो बाह्य परिग्रह और अंतरंग परिग्रह के बीच जिस 'निमित्त-नैमित्तिक संबंध' की व्याख्या की गई थी, उसे नींव की शिला मानकर हमारे परम आराध्य दिगम्बर आचार्य अपनी श्रुत-साधना के प्रासाद खड़े करते रहे। इसके विपरीत जिन्होंने अपनी आसक्ति और संकल्प-हीनता को छिपाने के लिये तरह-तरह के तर्क सामने रखकर, परिग्रह को साधना में सहायक मानकर संग्रहणीय और उपकारी मानकर ग्रहण कर लिया। वे हमारे दूसरे धर्म-बन्धु हैं। इस प्रकार परिग्रह-प्रियता और केवल परिग्रह-प्रियता ही महावीर के शिष्यों में 'पंथ-भेद' का कारण बनी। प्रारम्भिक अवस्था में उनके बीच अन्य कोई मत-मतान्तर नहीं थे।

महावीर के निर्वाण के ढाई हजार वर्ष बाद भी यदि उनके संघ की मूल परम्पराएं सुरक्षित हैं तो उसका मुख्य कारण यही है कि उनकी परम्परा के संवाहक पूज्य आचार्यों और मुनियों ने आरम्भ-परिग्रह के समस्त कार्यों से, नवकोटि त्याग पूर्वक स्वयं को दृढ़ता पूर्वक बचाकर रखने का प्रयत्न किया है और श्रावकों ने भौतिक प्रतिस्पर्द्धा और परिग्रह-प्रतिष्ठा की चकाचौंध वाले इस युग में भी, वीतराग धर्म के महान उपासक परिग्रह को 'पाँचवाँ पाप' स्वीकार किया है। उनके संत और श्रावक, अपने आपको जितना अनासक्त रखते हुये आगे बढ़ रहे हैं, वे उतने ही पूज्य हैं, उतने ही प्रणम्य हैं।

नीरज जैन, शांति सदन, सतना (म.प्र.) महावीर जयन्ती २०११